Research Paper Hindi

उत्तरांचल के प्रारम्भिक नाटककार'
Utranchal ke Prarambhik Natkkaar

Dr. Sushil Kumar | Lecturer Hindi, Departmet of H Government inter college, NOUL

'उत्तरांचल' से हमारा तात्पर्य है कि गढ़वाल व कूर्मांचल को मिलाकर जो इतिहास, भूगोल, समाजशास्त्र, मानव शास्त्र व साहित्य बनता है। वही उत्तरांचल का स्वरूपा है। उत्तरांचल अपनी विशिष्ट संस्कृति रखता है और अपनी अनेक विशेषताओं के कारण 09 नवम्बर 2000 में राज्य बनने से पूर्व भी विश्व के मानचित्र पर प्रकट था। उत्तरांचल के प्रारम्भिक नाटककार कौन थे? ठीक–ठाक बताना कठिन है। गढ़वाल विश्व विद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक डॉ0 डी0आर0 पुरोहित का कहना है कि Þउत्तरांचल में नाटक उतने ही पुराने हैं, जितनी पुरानी यहाँ की संस्कृति है।Þ यहाँ की संस्कृति कितनी पुरानी है, इस प्रश्न को पूछने पर डॉ0 पुरोहित कहते हैं "उत्तरांचल की संस्कृति उतनी ही पुरानी है जितनी की भारतीय–संस्कृति।Þ *1

हमारा दृढ़मत है कि कालिदास के सम्पूर्ण साहित्य पर हिमालयी क्षेत्र का व्यापक प्रभाव है। यदि हम कालिदास को उत्तरांचल का प्रथम नाटककार स्वीकार लें तो अतिशयोक्ति न होगी। कालिदास के अतिरिक्त एक अन्तराल तक उत्तरांचल में नाटककारों के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। ऐसा नहीं है कि उत्तरांचल में कालिदास के पश्चात् नाटककार न हुए हों। लेकिन हमें लगता है कि इस अन्त. राल में गढ़वाल व कूर्मांचल निर्माण प्रक्रिया में थे, इसलिए समाज–निर्माण की इस प्रक्रिया में सृजन का अवसर शायद ही किसी को प्राप्त हो। विराट–भारत की लगभग सभी जातियों के आवागमन व यहाँ स्थापित होने की प्रक्रिया में बहुत कुछ ऐसा है जो प्रकाश में आने से वंचित रह गया। कूर्मांचल में कल्यूरी व चन्देलों के शासन के समय की स्थापत्य कला आज भी देखी जा सकती है। इसी प्रकार गढ़वाल के पंवारवंशी राजाओं के समय की चित्रकला के दर्शन भी किए जा सकते हैं। दुर्गम पर्वतीय–क्षेत्र में राजनीतिक प्रवेश के पश्चात सुशान्त साहित्य सृजन का वातावरण अवश्य प्रभावित हुआ होगा। ऐसे समय में रंगमंच तो अवश्य रहा होगा लेकिन उसका स्वरूप कुछ भिन्न रहा होगा, जिसका उल्लेख इतिहासकारों ने करना उचित नहीं समझा होगा। उत्तरांचल के रंगमंच का शुभारम्भ हमने पाण्डवनृत्य, रणभूत–नृत्य, हिलजात्रा, नन्दादेवी राजजात यात्रा, अनेक प्रकार के मुखौटा–नृत्य व रामलीला से स्वीकारा है। प्रारम्भिक रंगमंच के स्वरूप के लिये नाटककारों की प्रकट रूप में आवश्यकता न रही होगी लेकिन ब्रिटिश काल में समय बदला व नाटक की विधा से उत्तरांचल के साहित्यकारों का साक्षात्कार हुआ। तब गढ़वाल व कुमाऊँ में नाटक (स्थानीय बोलियों में भी) लिखे जाने लगे।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी– अनेक भारतीय विद्वानों ने कालिदास को प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व मानने में प्रबल तर्क प्रस्तुत किए हैं। इस मान्यता का मुख्य आधार है कालिदास को विक्रमादित्य का राजकवि मानना। इसकी दो बातों को सिद्ध करता है। पहली तो कालिदास विक्रमादित्य के राजकवि थे और दूसरी विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता तथा उनका समय निश्चित करना। अब यदि विक्रमादित्य का काल निर्धारण कर लिया जाय तो कालिदास का काल निर्धारण हो सकता है।

विक्रमादित्य सूर्यवंशीय परमार थे। कालिदास ने सूर्यवंश का वर्णन रघुवंश में किया है। *2 विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। कालिदास ने मेघदूत में उज्जयिनी का अत्यन्त उदात्त वर्णन किया है। महाकालेश्वर मन्दिर के निर्माता विक्रमादित्य शैव थे। कालिदास भी शैव थे अतः कालिदास और विक्रमादित्य का सम्बन्ध अवश्य था। वे विक्रमादित्य के दरबारी थे, किसी उपाधिकारी के नहीं।

अतएव यह मानना समीचीन प्रतीत होता है कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में कालिदास विक्रमादित्य के राजकवि थे। अतः उनका समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व ही था।

डॉ0 शिवानन्द नौटियाल ने कालिदास की जन्मभूमि गढ़वाल को माना है। डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने भी कालिदास का जन्मस्थान केदारखण्ड के कविल्ठा गाँव में स्वीकार किया है।'4

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ0 राजेन्द्र मिश्र के अनुसार, "महाकवि कालिदास निस्सन्देह हिमालय के उस क्षेत्र में अवतरित हुए जहां मन्दाकिनी एवं भाग. ीरथी अलकनन्दा एवं उसकी अन्य शाखा 'पिण्डर' के विषय में कवि मौन है। वह बा. र–बार भागीरथी एवं मन्दाकिनी की ही चर्चा करता है। इन नदियों के विषय में कवि का ज्ञान एवं अनुभव विस्तृत तो है ही, सूक्ष्म एवं विश्वसनीय भी है।

कवि को भागीरथी के 'निर्झर–सीकरों में परिस्नान पवन' का अनुभव है। उसे मन्दाकिनी के भी 'सलिल की शिशिरता से ओत प्रोत मरूतों का प्रत्यक्ष अनुभव है। कुमा. रसम्भवम् तथा मेघदूत के ये दो पद्य ही यह सिद्ध करने में समर्थ है कि कवि का जन्म इसी पर्वतीय अंचल में हुआ था।

यदि गढ़वाल कालिदास की जन्मभूमि स्वीकार ली जाय, तो कालिदास ही उत्तरांचल के प्रथम ऐतिहासिक नाटककार हैं।

कालीदास महान– कवि व महान नाटककार दोनों ही थे। मेघदूत, कुमार संभवम्, रघुवंशम् उनके प्रसिद्ध महाकाव्य हैं।

नाट्य–लेखन ने कालिदास को न केवल विश्वप्रसिद्ध कर दिया अपितु कालजयी भी बना दिया। कालिदास का 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' विश्व का अग्रगण्य नाटक है। इस नाटक के लगभग विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। विश्व के लगभग सभी देशों में इस नाटक का अनेक बार मंचन हो चुका है।

मालविकाग्निमित्रम् और विक्रमोर्वशीयम् भी कालीदास के कालजयी नाटक हैं। वास्. तव में कालिदास को उत्तरांचल और भारत की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता, कालिदास विश्व के महामानव हैं।

1- jktk :npUn no %& अल्मोड़ा नगर चन्द राजाओं की राजधानी रहा है, साथ ही यह पर्वतीय अंचल की सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र भी है। कूर्मांचल नरेश रूद्रचन्द्र देव साहित्य और संस्कृति प्रेमी राजा थे। राजनीतिक गतिविधियों में व्यस्त रहने के पश्चात् भी साहित्यिक रचना–धर्मिता का गुण इनमें विद्यमान था। राजा रूद्रचन्द्र देव ने संस्कृति में बहुत अच्छे नाटकों की रचना की है। इस दृष्टि से हम राजा रूद्रचन्द्र देव को उत्तरांचल का कालिदास के पश्चात् दूसरा नाटककार मान सकते हैं। सन् 1582 ई0 में राजा रूद्रचन्द्र देव ने 'उषारागोदया' नाटिका की रचना की इसके पश्चात् उन्होंने 'ययाति–चरित्र' आदि नाटक भी लिखे। राजा रूद्रचन्द्र देव ने संस्कृत नाटकों को दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी के पटाक्षेप–काल से आगे बढ़ाकर सोलहवीं शताब्दी तक का विस्तार दिया। इनकी साहित्यिक–रचनाओं की अभी और खोज की जानी चाहिये, जिससे उनकी अन्य साहित्यिक–कृतियाँ भी प्रकाश में आ सकें। *3

2- HkokuhnRr Fkify;ky %& संस्कृत और हिन्दी के पिछले कई प्रतिभाशाली कवियों ने अपने ग्रंथों में अपने संबन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। भास, कालिद. ास, कबीर, तुलसी, सूर की जीवनी के संबन्ध में उनके ग्रन्थ मौन है। मौन शती से गढ़वाली नर–नारियों के कण्ठहार बने रामी के गीत के रचयिता का केवल नाम–मात्र ही विदित है। इसके विपरीत जय विजय नाटक के रचयिता पण्डित भवानीदत्त थपलियाल, प्रह्लाद नाटक में अपने वंश की बीस पीढ़ियों का विवरण 1 जनवरी 1929 तक का दे गए है। उस विवरण में बहुत सी रोचक सूचनाए¡ हैं, जिन्हें स्थानाभाव से यहाँ देना सम्भव नहीं है।

गढ़वाली भाषा में सर्वप्रथम नाटक 'जय–विजय' के रचयिता पण्डित भवानीदत्त का जन्म 1867 ई0 में गढ़वाल की पट्टी मवालस्यूं के खैड़ गाँव में हुआ था। इनके पिता विष्णुदत्त पटवारी की तीन पत्नियों में से ये दूसरी से उत्पन्न हुए थे। अंग्रेजी मिडिल तक शिक्षा पाने के पश्चात् इन्हें देहरादून में कलक्ट्रेट–कार्यालय में नियुक्ति मिल गई। 10–12 वर्ष तक वहाँ कार्य करने के पश्चात् इन्हें ट्रेजरी हेडक्लर्क बनाकर इनका स्थानान्तरण मेरठ में किया गया। वहाँ 10–11 वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् उनका स्थानान्तरण मुजफ्फरनगर में हो गया। वहाँ 7–8 वर्ष तक नौकरी करने के पश्चात् ये 1920 में सेवानिवृत्त होकर अपने गाँव खैड़ में आ गए। यहीं 1932 में उनका स्वर्गवास हुआ।

उन्होंने अपने सरकारी जीवन में ही सच्चरित्रता एवं विश्वसनीयता से कार्य किया। वे प्रहसनप्रिय और प्रत्युत्पन्नमति वाले व्यक्ति थे। ज्वाल्पा देवी परिवार की इष्टदेवी थी। उसके और नृसिंह देवता के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। उन्होंने धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वे गढ़वालियों की सर्वांगीण उन्नति चाहते थे। उनके नाटकों से विदित होता है कि उन्हें थियेट्रिकल कम्पनियों एवं नौटंकियों के नाटक देखने में आनन्द आता था।

श्री भवानीदत्त थपलियाल की दो पत्नियाँ थी। इनकी एक पत्नी से ईश्वरानन्द तथा दूसरी पत्नी से गिरीशानन्द और महादेवप्रसाद नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ईश्वरानन्द जनवरी 1929 में एकाउन्टेंट के पद पर नियुक्त थे। तथा ईश्वरानन्द के पुत्र दयानन्द भी उत्पन्न हो गए थे। 1932 में जब भवानीदत्त थपलियाल का स्वर्गवस हुआ उनके परिवार में उनकी पत्नियाँ, पुत्र, पुत्रवधुएँ और पौत्र थे। वे पर्याप्त सम्पत्ति के स्वामी थे।समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मानकोट और मालकोट में अपने मकान और तिबारियाँ थी। थपलियाल जी के पौत्र दयानन्द थपलियाल ने पीछे देहरादून में आन.

न्द फार्मेसी की स्थापना की थी। भवानीदत्त के वंशजों में से कुछ विभिन्न पदों पर राजकीय सेवा में नियुक्त हैं तथा एक आकाशवाणी में कार्यरत हैं।*4

साहित्य–सेवा – भवानीदत्त थपलियाल छात्र–जीवन से ही हिन्दी में पद्य रचना करने लगे थे। पीछे वे गढ़वाली में भी पद्य रचना करने लगे। दिसम्बर 1908 में गढ़वाल–भ्रातृ–मण्डल का प्रथम अधिवेशन कोटद्वार में हुआ। उसमें थपलियाल जी ने अपनी एक गढ़वाली कविता सुनाई, जिसका शीर्षक है–'अरे पर्वतनिवासी जाग!' उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर गढ़वाल–भ्रातृ–मण्डल ने उनसे अनुरोध किया कि वे 'गढ़वाली जनता के मनोरंजन, दुर्व्यसनों के शमन तथा दुराचारों के भंजनार्थ ठेठ गढ़वाली भाषा में किसी एक पुस्तक की रचना करें। इससे प्रोत्साहित होकर थप. लियाल जी ने दो गढ़वाली नाटकों की रचना की। जय–विजय और प्रहलाद। दोनों की कथा–वस्तु एक–दूसरे से जुड़ी है। जय–विजय नाटक छोटा है। उसका प्रकाशन उन्होंने 1911 में किया। किन्तु प्रहलाद नाटक के रचनाकाल के सम्बन्ध में उन्होंने जय–विजय नाटक की भूमिका में लिखा है कि पहले उन्होंने प्रहलाद नाटक की रचना की थी। किन्तु पीछे यह सोचकर कि जय–विजय नाटक के अभाव में प्रहलाद नाटक की कथा अधूरी ही रहेगी, उन्होंने जय–विजय नाटक बनाया तथा पहले उसे ही प्रकाशित किया। प्रहलाद नाटक की भूमिका में उन्होने लिखा है कि यह नाटक 1913 ई0 में बन चुका था, किन्तु शीघ्र ही यूरोप में प्रथम महासमर आरंभ हो जाने से इसका प्रकाशन न हो सका। 1930 में प्रकाशित प्रहलाद नाटक के अन्तिम दोहे में कहा गया है:– "श्री सम्वत उन्नीस सौ सत्तर आश्विन मास।भयो भवानीदत्त को नाटक पूरण हि पास।।"

अर्थात् नाटक संवत् 1970 के आश्विन मास में तदनुसार सन् 1913 के अक्टूबर मास में पूरा हुआ। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि थपलियाल जी ने 1911 तक प्रहलाद नाटक की रचना कर डाली थी, पर अक्टूबर 1913 में उन्होंने उसे अन्तिम रूप दिया था महासमर के पश्चात् उसकी भूमिका में महासमर के परिणाम संबंधी सवैया को स्थान दिया उन्होंने 1–1–29 को नाटक के अन्त में इतिहास शीर्षक के अन्तर्गत थपलियालों का इतिहास लिखकर जोड़ा। जय–विजय नाटक बहुत लोकप्रिय हुआ। उसका 2000 प्रतियों का प्रथम संस्करण शीघ्र समाप्त हो गया। पर थपलियाल जी उसके द्वितीय संस्करण को प्रकाशित न करे सके। प्रहलाद नाटक भी बहुत लोकप्रिय हुआ। रामलीलाओं में पहले दिन जय–विजय नाटक का ही अभिनय किया जाता था। 1960 तक दोनों नाटक सर्वथा अप्राप्य हो चुके थे। इनके कई चांफलू गीत जन–साधारण में प्रचलित थे। प्रहलाद नाटक की भूमिका में शिवप्रसाद डवराल जी ने लिखा है कि "आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व (अब चालीस पूर्व मान लेना चाहिए) मैं इन नाटकों की ढूंढ करता हुआ कवि के पौत्र डॉ0 दयानन्द थपलियाल को देहरादून में मिला। उनके पास जय–विजय नाटक तो नहीं था, पर प्रहलाद नाटक की तीन प्रतियाँ थी। उनमें से एक को उन्होंने मुझे पुनः प्रकाशन के लिये देने की कृपा की। जय–विजय नाटक की बहुत ढूंढ करने पर उसकी एक फोटोस्टेट प्रति श्री राजेन्द्र ध स्माना से मुझे प्राप्त हुई। दुर्भाग्य से उसमें 4 पृष्ठ लुप्त पाए गए उनकी ढूंढ में हूँ। प्राप्त होने पर नाटक को प्रकाशित किया जाएगा।

दोनों नाटक थपलियाल जी की प्रौढ़ रचनाएं हैं। उनकी अन्य रचनाएं भी रही होगी जो अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकी।

भवानीदत्त थपलियाल जी के 'जय–विजय' नाटक की गढ़वाली (संभवतः उत्त. रांचल लोकभाषा) का पहला नाटक माना जाता है। उनका दूसरा नाटक प्रहलाद भी गढ़वाली का दूसरा नाटक है। फौंदार जी की कछड़ी, बाबा जी की कपाल क्रिया तथा कलिजुग्यानन्दी की पाठशाला भी उनके अन्य नाटक हैं, जो प्रहलाद नाटक पर ही आधारित लगते हैं।

3- lR;i:lkn jrMh ¼pkj lkFkh½ :– नाटक को सभी प्रकार के काव्यों में रम्य अर्थात् आनन्ददायक एवं श्रेष्ठ कहा गया है। गद्य–पद्य–काव्य का रसास्वादन अकेला पाठक ही करता है और अपने स्तर के अनुसार काव्य में वर्णित विषय या घटनाओं को अपने अन्तस्तल में देखता है। नाटक के अभिनय, का एक नहीं अनेक व्यक्ति प्रत्यक्ष, देखते हुए रसास्वादन करते हैं। नाटक के अभिनय से दर्शकों के नेत्रों और कानों के साथ ही सारी चेतना प्रफुल्लित होती है। छोटी–सी गढ़वाली नाटिका 'पाँखु' में बहुत रमणीयता होने पर भी इसके लेखकों ने अपने नामों को प्रकट नहीं किया है। इसके पहले जो दो संस्करण 1936 और 1955 ई0 में छपे उनमें इस नाटिका के लेखकों का नाम 'चार गैल्या' अर्थात् 'चार साथी' ही छपा है। इतनी सुन्दर रचना के लेखक होने पर भी उनके द्वारा अपना नाम प्रकट न करना, उनकी एकान्त सा. हित्य–साधना एवं आत्म–विज्ञापन से दूर रहने के संकल्प का सूचक है। इन 'चार गैल्या' रचनाकारों में से एक वयोवृद्ध साहित्यकार पण्डित सत्यप्रसाद रतूड़ी है। उनसे संपर्क करने पर विदित हुआ कि 'पा¡खु' की रचना 1932 में उन्होंने तथा उनके मित्र विद्यालाल पुंडीर, देवीदत्त नौटियाल तथा मेधाकर नौटियाल, चारों ने मिलकर की थी। *5

चारों टिहरी नगर के निवासी थे। चारों में घनिष्ठ मित्रता थी, चारों साहित्यिक रूचि वाले थे और समय–समय पर एक स्थान पर बैठकर साहित्य चर्चा करते थे।

उन दिनों टिहरी नगर में टिहरी राज्य की राजधानी थी। टिहरी राज्य के अन्तर्गत वर्तमान टिहरी और उत्तरकाशी दोनों जिले थे। टिहरी – नरेश कीर्तिशाह की मृत्यु 25 अप्रैल 1913 के दिन हो गई। उस समय उनका ज्येष्ठ पुत्र नरेन्द्रशाह अवयस्क था। अस्तु टिहरी राज्य की व्यवस्था के लिए, सरकार ने कमिश्नर कुमाऊँ की संस्तुति पर शैमियर नामक एक सिविलियन अंग्रेज अफसर की अध्यक्षता में संरक्षण समिति की स्थापना की थी। शैमियर 1913 से 1916 तक टिहरी राज्य की संरक्षण समिति का अध्यक्ष रहा। उसके शासनकाल में संरक्षण समिति के एक सदस्य भवानीदत्त उनियाल ने राजधानी टिहरी में उसके नाम से 'शैमियर ड्रामेटिक क्लब' की स्थापना की थी। 1916 में प्रतापनगर में हैजे से शैमियर की मृत्यु हो जाने पर भी इस क्लब का अस्तित्व बना रहा। क्लब के द्वारा समय समय पर टिहरी नगर में नाटकों का अ. भिनय किया जाता था।इस क्लब को 'शैमियर औफीशियल ड्रामेटिक क्लब' कहा जाता था। ऊपर लिखे चारों मित्र क्लब के सक्रिय सदस्य थे। अन्य लेखकों के नाटकों का अभिनय तो वे करते ही थे, उन्होंने स्वलिखित नाटिका के अभिनय की योजना बनाई। उन्होंने नाटिका की पाण्डुलिपि साहित्यप्रेमी विजयराम रतूड़ी और बलवीर शाही को दिखाई। चारों साथियों ने उनका आभार प्रकट करते हुऐ उनके नाम भी 'द्वी छवीं' में दिए हैं पर उन्होंने अपने नाम अप्रकट ही रखे। कितनी महान्–भावना है, आत्म–. विज्ञापन से बचने की! मध्य युग के कवि अपने प्रायः प्रत्येक पद्य में अपना नाम देकर अपनी मुहर लगाते थे। औरों की देखा–देखा कबीर, सूर, तुलसी और विहारी भी ऐसा करते थे। आज भी अनेक लेखक अपनी छोटी बड़ी पुस्तक में अपने संबंध में बहुत सी सूचनाए¡ दिया करते हैं। पर इन चार मित्रों ने पुस्तक में ऐसा नहीं किया। 'द्व ी छवीं' में उन्होंने लिखा है– यह कोई बड़ी वस्तु(रचना) नहीं है। पर वास्तव में रचना छोटी सी होने पर भी अति उत्तम है।

रचना एवं प्रकाशन– नाटिका की रचना संख्या 1989 वि/सन् 1932 ई0 की मकर संक्रान्ति(जनवरी 14) से कुछ पहले हुई। मकर सक्रांति के दिन, टिहरी और उत्तरक. शी में 'थल' का मेला बहुत लम्बे समय से लगता आया है। उस दिन इसे नाटिका का प्रथम बार अभिनय किया गया। जनता ने इसे बहुत पसंद किया। टिहरी में दो बार इसका अभिनय करते समय इसमें कुछ सुधार किए गए। तब 1936 में इसे सत्यप्रसाद रतूड़ी ने उत्तराखण्ड प्रेस देहरादून में छपवाकर प्रकाशित किया। इसकी बड़ी माँग थी। पहला संस्करण शीघ्र ही बिक गया। टिहरी और गढ़वाल में प्रायः सभी मिडिल स्कूलों में इसका कई बार सफलता पूर्वक मंचन हुआ। इसकी मांग बढ़ती ही गई। तब 1955 में इसका दूसरा संस्करण हिमाचल प्रेस, मुनि की रेती से प्रकाशित किया गया। दूसरा संस्करण समाप्त हो जाने पर 1962 में इसका तीसरा संस्करण छपवाने का आयोजन था, इसके लिये डॉ0 गोविन्द 'चातक' ने आमुख भी लिखा था। आमुख छपने के पश्चात् व्यवधान पड़ गया और नाटिका न छप सकी। 1980 में पुंड. ीर प्रिंटिंग प्रेस टिहरी से इसके प्रकाशन की योजना बनी थी, पर कार्य–रूप में परिणि ात न हो सकी।

कुछ वर्ष पूर्व राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय के स्नातक श्रीश डोभाल ने गढ़वाल–मण्डल में नाट्य–शिविरों का आयोजन किया था। उन्होंने टिहरी के एक साहित्यप्रेमी प्रेमसिंह परमार से पाँखु की प्रति लेकर टिहरी के नाट्य–शिविर में उसका मंचन करवाया। इसकी दर्शकों ने बड़ी सराहना की। इस बार नाटिका का मंचन नए साधनों से अत्यन्त आकर्षक ढंग से हुआ था। रतूड़ी जी से पाँखु की प्रतिलिपि लेकर लखनऊ से आकाशवाणी के उत्तरायण कार्यक्रम में भी पाँखु का प्रसारण हुआ था।

(i) if.Mr nohnRr ukfV;ky– नौटियाल जी ने टिहरी के प्रताप हाईस्कूल में शिक्षा प्राप्त की थी। वे सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते थे। नाटकों के अभिनय में विशेष रूचि थी। 1932 में टिहरी नगर में मकर सक्रांति की रात्रि में जब पाँखु का मंचन हुआ था, तो उन्होंने गंगीराम का अभिनव किया था। टिहरी में उनकी खाद्यन्न की छोटी–सी दुकान थी। वे छात्रावास से ही 'शैमियर ऑफी. शियल ड्रामेटिक क्लब' के सदस्य थे। एक बार तो उस क्लब के मंत्री भी रहे। अभिनय में विशेष रूचि होने से वे व्यापार छोड़कर बंबई चले गए और वहाँ फिल्मों में सामान्य पात्रों की भूमिका निभाते रहे। जब वहाँ भी मन नहीं लगा तो टिहरी लौट आए। वहीं उनका देहावसान हुआ। उनका जन्म संभवतः टिहरी में 1906 के आसपास हुआ था।

(ii) Jh fo|kyky iMhj& पुंडीर जी टिहरी नगर में पोस्टमास्टर थे। पीछे भी पोस्टल विभाग में ही सेवारत रहे ड्रामिटिक क्लब के सदस्य थे। कभी–कभी, विशेषकर, गढ़वाली नाटकों में अभिनय करते थे। 1932 में पाँखु के मंचन में इन्होंने बर्मी (नाटिका में ब्राह्मण) का अभिनय किया था। इनका जन्म भी टिहरी नगर में बीसवीं सदी में प्रथम दशक में हुआ था।

(iii) if.Mr e/kkdj ukfV;ky& इनका जन्म टिहरी नगर में 1914 के आसपास हुआ था इनका मकान नगर में सेमल के तप्पड़ के निकट था। इन्होंने नगर में हिमालयन विद्यापीठ के नाम से अपना प्राइवेट हाईस्कूल स्थापित किया था। ये भी क्लब के सक्रिय सदस्य थे। महिलाओं का अभिनय बड़ी कुशलता से करते थे। इन्होंने कुछ कहानिया¡ और जीवनस्केच लिखे थे, जो प्रकाशित भी हुए थे। विद्वानों ने उनकी प्रशंसा की थी। ये टिहरी राज्य की खास–पट्टी के मूल निवासी थे और टिहरी में ही रहने लगे थे। 1932 में टिहरी में नाटिका के मंचन के अवसर पर इन्होंने पाँखु का अभिनय किया था, जिसकी दर्शकों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की थी।

चारों गैल्या(साथी) अपने समय के नागरिकों में, विशेषकर युवावर्ग में विशेष लोकप्रिय थे।

(iv) if.Mr lR;i:lkn jrMh& रतूड़ी जी का जन्म टिहरी नगर में 28 मई 1908 में हुआ था। इनके पिताजी टिहरी राज्य में मेडिकल डाक्टर के यप में सेवारत थे। इनकी शिक्षा टिहरी में और फिर देहरादून में हुई। छात्र–जीवन से ही ये साहित्य–साधना करने लगे थे। 1926 में इनकी पहली कहानी 'कैलाश' मुरादाबाद से प्रकाशित एक पत्रिका में छपी। उत्तरांचल के दधीचि श्री श्रीदेव सुमन से रत. ूड़ी जी की घनिष्ठता थी। टिहरी में रतूड़ी जी ने बालसभा की स्थापना की थी, जिससे छात्रों में राष्ट्रभक्ति का प्रचार होता था। 1931 में उन्हें टिहरी के प्रताप हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त किया गया। पर राष्ट्रभक्ति की भावना के कारण उन्हें 1945 में टिहरी राज्य की सेवा से त्यागपत्र देना पड़ा। लेखन कार्य तो वे

पहले से ही करते थे। अब देहरादून में आकर साहित्य–साधना में जुट गए। 1940 में उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र 'हिमाचल' का प्रकाशन आरम्भ किया। कई वर्ष तक सफलतापूर्वक चलने के पश्चात् 1981 में यह पत्र बन्द हो गया। राहुल सांकृत्यायन, राजा महेन्द्रप्रताप, सत्यकेतु विद्यालंकार आदि विद्वानों से उनकी घनिष्ठता थी। वे दून–दर्पण, हिमानी, मसूरी–सन्देश तथा मसूरी टाइम्स के संपादन से भी जुड़े रहे। तथा जीवन के उत्तरार्द्ध में भी फ्यूंली और बुरांस नामक दो फोल्डर पत्रिकाओं का सम्पादन करते रहे। उनकी पुस्तकें, मसूरी–स्मारिका, मनोरस मसूरी और पिकनिक स्थल, हमारा गढ़वाल आदि विशेष लोकप्रिय हुई। उनका एक कहानी संग्रह भी शीघ्र प्रकाशित होने वाला है।

4- xkfoUn cYyHk iUrk % 26 vxLr 1898&1996% – गोविन्द बल्लभ पन्त हिन्दी के अच्छे नाटककारों में रहे हैं। कुछ लोग इन्हें सरकार के भूतपूर्व गृहमंत्री गोविन्द बल्लभ पंत भी समझते रहे हैं और इस वजह से भी ये आलोचकों की दृष्टि में अछूते रहे गए। इस सदी के दूसरे से नवें दशक तक निरन्तर साहित्य रचना में संलग्न पंत को समुचित सम्मान नहीं मिल पाया। *5

गोविन्द बल्लभ पन्त के व्यक्तित्व निर्माण में उनके परिवार के धार्मिक वातावरण तथा संस्कृतानुराग का तो प्रचुर प्रभाव पड़ा ही; तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का भी योगदान रहा। उनके पूर्वज महाराष्ट्र से आकर गंगोलीहाट (पिथौरागढ़) में बसे और वहाँ से पूरे कुमाऊँ में फैले। पन्त के दादा देवीदत्त सोमेश्वर के समीप मलौज गाँव के निवासी थे देवीदत्त के पुत्र पं0 ईश्वरीदत्त के तीन पुत्रों में सबसे छोटे पुत्र गोविन्द का जन्म 29 जुलाई 1898 को रानीखेत में हुआ। मां का नाम माधवी था। पांच वर्ष की अल्पायु में ही गोविन्द पिता की स्नेहमयी छाया से वंचित हो गए। लालन पालन मां की छत्रछाया में हुआ।

गोविन्द ने अल्मोड़ा मिशन (रैमजे) स्कूल से हाईस्कूल (स्कूल लीविंग) की परीक्षा 1917 में उत्तीर्ण की उसके बाद वाराणसी सैन्ट्रल कॉलेज में प्रवेश लिया। तब देशानुराग की भावना जनमन को आन्दोलित कर रही थी और प्राणप्रण से स्वातंत्रता समर में कूद पड़ने की प्रेरणा दे रही थी। कवियों की वाणी भी भारतवासियों को उद्बोधन दे रही थी।

जीते जी गोविन्द वल्लभ पंत की अधिक चर्चा नहीं हुई लेकिन हिन्दी संसार उन्हें विस्मृत कर सके यह भी संभव नहीं है। गोविन्द वल्लभ पन्त हिन्दी–जगत के महान रचनाकार हैं, ऐसा मूल्यांकन भविष्य में अवश्य होगा।*6

5- x.kkuUn ifFkd % जनपद टिहरी गढ़वाल के ग्यारह गाँव पट्टी में खसेटी गाँव के मूल निवासी गुणानन्द पथिक जी का जन्म लगभग 1915 ई हुआ था। स्वतन्त्रता सेनानी व गढ़वाली के महान् – नाटककार गुणानन्द पथिक ने गढ़वाली – रामयणा (गढ़ भाषा, लीला रामायण) की रचना भी की। श्रीदेवसुमन गढ़वाली नाटक की रचना करने वाले गुणानन्द पथिक का जीवन अत्यन्त संघर्षमय रहा। समाज व सरकार की ओर से जीते–जी इन्हें जो सम्मान मिलना चाहिये था, नहीं मिल पाया। अब मृत्यु के पश्चात् भी उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। 'गढ़ साहित्य संस्कृति विकास परिषद्' ने गुणानन्द पथिक जी की 'गढ़–भाषा, लीला रामायण' को सन् 1983 में प्रकाशित करवाया। पथिक जी की इसी रामायण को आधार बनाकर गढ़ साहित्य संस्कृति विकास परिषद् ने देहरादून में भव्य गढ़वाली रामलीलाओं का आयोजन भी करवाया। पथिक जी द्वारा 'श्रीदेव सुमन' नाटक का भी 'गढ़ गाथा कला मंच' ने अनेक बार मंचन किया।

डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल ने 'गढ–भाषा, लाला रामायण' के आमुख में श्री गुणानन्द पथिक जी के संघर्षमय जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'गढ़–साहित्य संस्कृति विकास परिषद' के सचिव श्री गुरूप्रसाद उनियाल ने हमें बताया कि पथिक जी की 'गढ़–भाषा, लीला रामायण' का मंचन गढ़वाल के गाँव –गाँव में तो होता ही था। देहरादून में भी सन् 1977 से (बारह दिन की) भव्य–गढ़वाली–रामलीला अभी हाल के वर्षों तक होती रही।*7

श्री गुणानन्द पथिक सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की तरह अभावों का जीवन यापन करते हुए 3 मई 2000 को चिर निद्रा में समा गए।

6- c.ekgu "kkg& बृजमोहन शाह ख्याति प्राप्त नाटककार रहे हैं, इनका जन्म सन् 1933 में नैनीताल खास में हुआ था। बृजमोहन शाह का पहला नाटक 'अल. गोजा' था इसके अलावा अलगोजा में मानवीय क्रूरता का भी चित्रण किया गया है। शाह जी का दूसरा नाटक 'त्रिशंकु' था। त्रिशंकु ने न केवल हिन्दी अपितु भारतीय रंगकर्म में नवीन आयाम स्थापित किए।

'शाह–ए मात' नाटक में शाह जी ने सेना से सेवानिवृत्त किसी निकट सम्बन्धी के आचार व्यवहार से प्रेरणा लेकर सैनिकों के मनोविज्ञान का चित्रण किया है। शाह जी का 'युद्धमन' नाटक युद्ध क्षेत्र तथा उससे परे के जन–जीवन का चित्रण–विश्लेषण था। इस नाटक के लिये बृजमोहन शाह ने बहुत अन्वेषण किया। प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध का विवरण युद्ध की पृष्ठभूमि पर लिखे नाटक और उपन्यास, फिल्में देख. कर 'युद्धमन' नाटक की रचना की गई। भारतीय रंगमंच के ख्याति प्राप्त कलाकार व राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के पूर्व निर्देशक श्री बृजमोहन शाह का निधन सन् 1998 में हुआ।

7- c.Un yky "kkg& बृजेन्द्र लाल शाह का जन्म 13 अक्टूबर 1928 को अल. मोड़ा में हुआ। शाह जी ने लगभग 38 नाटक लिखे। इनके नाटकों में संगीत व साम्यवाद का मिश्रण दिखाई देता है। इनके 38 नाटकों में से प्रमुख नाटक इस प्रकार हैं– 'बलिदान', 'भाना गंगनाथ', 'कसौटी', 'आबरू', 'सुहागदान', 'चौराहे की आत्मा', 'एकता', 'चौराहे का चिराग', 'पर्वत का स्वप्न', शिल्पी की बेटी', 'रेशम की डोर', 'रितु रैण', 'खुशी के आंसू', 'कुमाऊँनी तथा गढ़वाली रामल. ीला', 'ज्ञान देव'(कठोपनिषद् पर आधारित), 'भसमासुर', 'तारकासुर', 'पहरेदार', 'राजुला–मालुशाही', 'अजुवा–बफौल', 'महाभारत'(पाण्डव जागर शैली पर), 'रसिक रमौल', 'जीतू बगडवाल', हिलजात्रा आदि नाटक प्रमुख हैं।

सर्वाधिक लोकप्रिय कुमाऊँनी गीत 'बेडू पाको बारमासा' के रचयिता का श्रेय भी श्री बृजमोहन शाह को जाता है।

8- yfyr ekgu Fkifyy;ky& उत्तरांचल की प्रमुख स्थानीय भाषा गढ़वाली में नाटक लिखने व रंगमंच के अनुकूल नाटक लिखने का श्रेय श्री ललित मोहन थपलियाल को जाता है। श्री ललित मोहन थपलियाल का रंगमंच से सीधा सम्बन्ध रहा है। उनके नाटक रंगमंच के लिये बहुत सफल माने जाते है। उनके द्वारा लिखे गये नाटक इस प्रकार हैं– आछरियो को ताल, 'खाडू लापता', 'एकीकरण', 'घर जवै', आदि लोक प्रिय नाटक हैं जिनका अनेक बार भिन्न–भिन्न स्थानों पर मंचन हो चुका है व आज भी हो रहा है।

उत्तरांचल के प्रारम्भिक नाटककारों की सूची बहुत लम्बी है, जिनका उल्लेख करना यहाँ पिष्टपेषण के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा, क्योंकि लगभग सभी नाटककारों का उल्लेख 'शोध–प्रबन्ध' में उनकी रचनाओं सहित आता जा रहा है। अबोध बन्धु बहुगुणा, भगवती प्रसाद पाथरी, गिरधारी लाला 'कंकाल', घनानन्द बहुगुणा, विश्वम्भर दत्त उनियाल, ईश्वर दत्त जुयाल, वाणी भूषण शर्मा, दमोदर प्रसाद थपलियाल, डॉ0 पुरूषोत्तम डोभाल, डॉ0 गोविन्द चातक, डॉ0 शिवानन्द नौटियाल, राजेन्द्र धसमाना, जीत सिंह नेगी, कन्हैया लाल डंडरियाल आदि अनेकों नाटककार हैं जिनके (नाटकों का उल्लेख 'शोध–प्रबन्ध' में कहीं न कहीं होता जा रहा है।) जीवन–वृत्त का उल्लेख सम्भव नहीं है।

REFERENCES

1. 'कालिदास', स्मारिका (2001), ले0डॉ0 डी0आर0 पुरोहित, पृष्ठ 63 द्य 2. 'क्व सूर्य, प्रभवो वंश : क्व चाल्प विषयः मति'/कालिदास/रघुवंशम् 1/1 द्य 3. प्रहलाद नाटक, (भवानीदत्त थपलियाल), सम्पादक शिवप्रसाद डबराल, वीर–गाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, पृष्ठ–2 द्य 4. भारतीय साहित्य के इतिहास में यह सौभाग्य का विषय है कि कोई लेखक अपनी अनेक पीढ़ियों का परिचय अपनी पुस्तक में सार्वजनिक कर रहा है, जबकि यह भारतीय परम्परा नहीं रही है और इस परम्परा के न रहने से भारत के इतिहास को क्रमानुसार विस्तार से लिखना सम्भव नहीं हो पाया है। द्य 5. पाँखु (गढ़वाली नाटिका), सत्यप्रकास रतूड़ी व साथी (चार गैल्या), संपादक शिव प्रसाद डबराल वीरगाथा प्रकाशन दोगडा, गढ़वाल, पृष्ठ 2 द्य 6. उत्तरांचल की अनेक विभूतियों का मूल्यांकन उचित प्रकार से नहीं हो पाया। चन्द्र कुँवर बर्त्वाल, मनोहर लाल उनियाल श्रीमन्, श्रीदेव सुमन, भक्त दर्शन, गिरीश चन्द्र तिवारी (गिर्दा) आदि अनेक महापुरुषों का गोविन्द बल्लभ पन्त की भाँति ही उपेक्षा हुई है। द्य 7. गढ़ भाषा, लीला रामायण, लेखक गुणानन्द पथिक, (आमुख) पृष्ठ 8–9